Research Paper | E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 5 | ISSUE : 9 | SEPTEMBER 2019

दलित आन्दोलन व दलित विमर्श के तत्त्व : सामाजिक–साहित्यिक दृष्टि से

डॉ. गोपीराम शर्मा [1] | चन्द्रपाल जांदू [2]

[1] सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.) – 335001

[2] सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग, डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.) – 335001

ABSTRACT:

दलित का अर्थ दमन से है, यह केवल जाति विशेष के लिए निश्चित नहीं किया जा सकता। एक पक्ष 'दलित' को जाति विशेष से जोड़कर देखता है। दलितों के लिए भक्तिकाल से लेकर अब तक चिन्तन होता आया है। आज दलित आन्दोलन में स्वानुभूति–सहानुभूति के तत्त्वों को लेकर मतभिन्नता है। मूल तत्त्व दलित चेतना है और उसकी सम्यक प्रस्तुति से है। जो कोई भी दलित चेतना सम्पन्न होकर सफलतापूर्वक विचार सम्प्रेषण कर सकता है, उसे ही दलित साहित्यकार माना जाएगा। दलित हित और दलित चेतना को छोड़कर अन्य कोई तत्त्व महत्त्वपूर्ण नहीं है।

KEYWORDS:

दलित आन्दोलन, विमर्श, साहित्य, अस्पृश्यता, अनुसूचित जाति, भक्ति आन्दोलन, अनुभूति, प्रामाणिकता, सहानुभूति, मानवतावाद, सामर्थ्यवान कवि, विशेषाधिकार, अस्तित्व, शोषण आदि।

उद्देश्य (Objectives) –

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य दलितों के संघर्ष व आन्दोलन को समझना एवं साहित्य में दलित विमर्श के तत्त्वों को जानना है। दलित साहित्य की स्वानुभूति बनाम सहानुभूति के मसलों पर विचार तथा दलित आन्दोलन की मूल चेतना को समझना इस शोध कार्य का उद्देश्य है। दलित की परिभाषा, दलित साहित्य के लक्ष्य, दलित व गैर–दलित लेखकों की भूमिका आदि की सही पड़ताल व निष्कर्ष स्थापना इस कार्य ध्येय है।

शोध प्रविधि (Methodology) –

इस शोध कार्य हेतु द्वितीयक स्रोत से आँकड़े प्राप्त किए गए हैं। इस द्वितीयक स्रोत में साहित्य व आलोचनात्मक ग्रन्थों से तथ्य एवं सूचनाएं प्राप्त की गई हैं। इन सूचनाओं को अपने मत का आधार बनाकर सापेक्षवादी ज्ञान मीमांसा पद्धति से विश्लेषण–संश्लेषण किया गया है तथा आगमन–निगमन पद्धति से अन्तिम निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं।

विषय उपस्थापन –

'दलित विमर्श' आज के समय का एक बड़ा मुद्दा बनकर उभरा है। इसने दलित चेतना और अस्मिता के विकास के पक्ष में माहौल निर्मित किया है। यह सब दलित साहित्य ने दिया है। हजारों वर्षों से दलितों ने जो सांस्कृतिक उत्पीड़न सहा है, सामाजिक–आर्थिक भेदभाव झेले हैं, जिस शोषण–पीड़ा से वह गुजरा है, उस सब यथार्थ के पुनर्सृजन का नाम ही दलित साहित्य है। मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं– अन्न, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा को पूरा करने के लिए रोजगार एवं समाज में रहने के लिए बराबरी व सम्मानजनक स्थान की कामना को लेकर दलित साहित्यकार अपने अन्दर और बाह्य दोनों पक्षों की पीड़ा से समाज को परिचित करवा रहे हैं।

शब्दकोशों में दलित शब्द का अर्थ दबाया हुआ, रौंदा हुआ, शोषित मर्दित आदि मिलते हैं। रामचन्द्र वर्मा ने अपने कोश में इसका अर्थ बताते हैं – 'मसला हुआ, मर्दित, रौंदा हुआ, विनष्ट किया हुआ।'[1] मराठी–अंग्रेजी शब्दकोश में मेलिसवर्थ ने दलित का अर्थ टुकड़ों में परिवर्तित बताया। संस्कृत शब्दकोश में यह शब्द 'दल' धातु से बना है, जहां 'दल' से कई अर्थ निकलते हैं–

1. दल– अविकसित, फटना, दुविधा।
2. दल– सैन्य, लश्कर, पत्र, पति

'दलित' शब्द में 'टुकड़े' वाला अर्थ ही ठीक है। अर्थात् दलित जो दबा हुआ, कुचला हुआ है। यहाँ 'जाति' भी एक निर्धारक तत्त्व है जो 'दलन' के साथ जुड़ती है। कुछ लोग मानते हैं जो अनुसूचित जाति में जन्मा है, वही दलित है। यह 'दलित' की संकुचित परिभाषा है पर इसके समर्थन में बहुत कुछ कहा गया है।

साहित्यकार कंवल भारती इसके समर्थन में कहते हैं– "वास्तव में दलित वही व्यक्ति है जो सामाजिक तथा आर्थिक दोनों दृष्टियों से दीन–हीन है, जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है, जिसे कठोर व गंदे कर्म करने के लिए बाध्य किया गया है, जिसे शिक्षा ग्रहण करने से रोका गया है, जिसे स्वतंत्र व्यवसाय करने से रोका गया है, जिस पर सवर्णों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और सिर्फ वही दलित है।"[2] माता प्रसाद कहते हैं– "दलित साहित्य ऐसे लोगों का साहित्य हो जाता है जो मुख्यतः हिन्दू समाज व्यवस्था शस्त्र और शास्त्र से पीड़ित, अपमानित और शोषित समुदाय आते हैं, उसमें अजा–अजजा और घूमंतू जातियां आती हैं।"[3]

डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन भी ऐसा मत देते हैं– "दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।"[4]

इसके विपरीत दूसरा पक्ष भी है। यहां दलित का अर्थ है गरीब एवं शोषित। दलित वर्ग में केवल अनुसूचित जाति ही नहीं आती। आदिवासी, भूमिहीन, श्रमिक, यायावर, पिछड़े आदि वे सब जो लम्बी शोषण प्रक्रिया का शिकार हुए हैं। ऐसा व्यक्ति ही दलित हैं, जो टुकड़े हो गया है पर मरा नहीं है– 'दादा का करजा पोते से नाय उतरने पाया/तीन रुपए में जमींदार के /सत्तर साल कमाया/जमींदार ने कहा काम तू/बेशक कहीं लगाले/मेरा रुपया तेरे पै है/उसका ब्याज फलाले/सत्तर सौ बासठ रुपया/ तेरे पे हमने जोड़ निकाले/ बूढ़ा तो मर गया कर्ज में/फिर वहां बेटा आया।"[5]

इस मत के लोग मानते हैं कि– "दलित शब्द की व्याख्या में केवल अछूत जाति का उल्लेख करने से काम नहीं चलेगा, इसमें अति पिछड़े हुए का समावेश करना होगा।"[6]

दलित विमर्श और चेतना के प्रसारण में दलित साहित्य अपनी भूमिका निभा रहा है। भक्ति आंदोलन से ही दलित को साहित्य का विषय बनाया

जाता रहा है। गुजरात के 'आदि कवि' नृसिंह मेहता ने अपने सम्प्रदाय में ऊँच–नीच को स्थान नहीं दिया। दलित साहित्य के आधार के रूप में भक्तों–संतों व विचारकों का पर्याप्त योगदान रहा। महाराष्ट्र के ज्योतिबा फुले, केरल के नारायण गुरू, तमिलनाडू के पेरियार रामास्वामी नायाकार, उत्तर भारत के अछूतानंद, उड़ीसा के भीम भोई, बंगाल के चांद गुरू, मध्यप्रदेश के गुरू घासीदास आदि ने दलित मुक्ति का आंदोलन खड़ा किया।

आधुनिक काल के प्रारम्भ में कवि दलपतराय, उमा शंकर जोशी, मराठी लेखक अण्णाभाऊ माटे, बाबूराव बागल, पटना के हीरा डोम, प्रेमंचद, निराला, नागार्जुन आदि के साथ ज्योतिबा फुले, डॉ. अम्बेडकर एवं दलित पैंथर जैसे संगठन ने ऊर्जा व गति दी। वर्तमान समय में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, श्यौराज सिंह बेचैन, भगवानदास, डॉ. धर्मवीर, सूरजपाल चौहान, कंवल भारती, नीरा परमार, सुशीला टाक भौरे, अजय नावरिया आदि प्रमुखता से दलित चेतना को स्वर दे रहे हैं।

दलित साहित्य को दलित, गैर दलित साहित्यकार समृद्ध कर रहे हैं। यह साहित्य प्रचुर मात्रा में छपा–पढ़ा जा रहा है, जो यह इंगित करता है कि लोग इससे जुड़ रहे हैं। यहाँ भी दो मत सामने हैं कि दलित साहित्यकार होने का हक किसे हो? पहला मत तो यही है कि दलित ही दलित साहित्य की सर्जना कर सकता है। "आज चातुर्वर्ण्य विरोधी विद्रोहात्मक अथवा दलितों के द्वारा दलितों के सम्बंध में लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य माना जा सकता है।"[7]

इस सम्बंध में प्रो. केशव मेश्राम कहते हैं– "हजारों सालों से जिन पर अन्याय हुआ, उन अछूतों को दलित कहना चाहिए और इन्हीं वर्ग के लेखकों से निर्मित साहित्य को दलित साहित्य कहा जाना चाहिए।"[8] यह वर्ग 'जाति' को अधिक महत्त्व देता है। उसके अनुसार जाति ही दलित साहित्य का निर्धारक तत्त्व है और जाति ही एक मात्र समस्या है– "कितना विकट होता है/भूख के गणित से/जाति का व्याकरण।"[9] यहां दलित साहित्यकार के लिए दलित जाति से होना इसलिए आवश्यक है क्योंकि उसका सत्य के प्रति आग्रह अधिक है। भोगा हुआ यथार्थ आंखों देखे यथार्थ से ज्यादा सच्चा है। यही बात जयप्रकाश कर्दम कहते हैं– "असली चीज है अनुभूति और सर्वाधिक प्रामाणिक अनुभूति वही हो सकती है, जो भुक्तभोगी की जुबान या कलम से अभिव्यक्त हो।"[10] गैर दलितों द्वारा लिखा गया लेखन कृत्रिम होगा। 'जाके पैर न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई?' गैर दलित बनावटी भाव, दया आदि का साहित्य लिखेंगे, जो दलितों को मंजूर नहीं। डॉ. शरण कुमार लिंबाले कहते हैं– "गैर दलितों के लेखन में सहानुभूति और दया की दृष्टि होती है। हमें सहानुभूति और दया नहीं चाहिए, अधिकार चाहिए।...... हमें यह गैर–दलित सफेदपोश गुंडा लगता है। गैर–दलितों के साहित्य को दलित साहित्य कहना साहित्यिक सांस्कृतिक छल और हेराफेरी है।"[11] यहां अम्बेडकरवाद ही दलित साहित्य का मूल है। जो इससे इतर होकर लिखता है वह न ब्राह्मण बन पाता है और न ही दलित। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं– "डॉ. अम्बेडकर और ज्योतिबा फुले की जीवन दृष्टि दलित साहित्य की ऊर्जा है।"[12] स्पष्ट है कि स्वानुभूति, जाति दलित साहित्य के लिए आवश्यक तत्त्व है। क्या कोई और चीज ऐसी हो सकती है, जो दलित साहित्य के लिए मूल्यवान है? इस पर प्रो. मैनेजर पांडेय कहते हैं– "गुलामी की यातना जो सहता है वही जानता है और जो जानता है वही पूरा सच कह सकता है। सचमुच राख ही जानती है जलने का अनुभव, और कोई नहीं।"[13] यहां 'भोक्ता' की प्रामाणिकता तो स्पष्ट हो जाती है पर जाति की नहीं। कहने का तात्पर्य है कि दलित जाति में पैदा सब व्यक्तियों की अनुभूतियां समान होंगी? सबने समान यातनाएँ सही हैं? ये प्रश्न हैं। डॉ. रजतरानी 'मीनू' भी ऐसा प्रश्न खड़ा करती है– "यदि भंगी समुदाय के दो सदस्यों में से एक ने मैला ढोया हो और दूसरे व्यक्ति ने झाड़ू भी हाथ में न पकड़ी हो, जब ये व्यक्ति दलित साहित्य की रचना करते हैं, तब कैसे कह सकते हैं कि दोनों के लेखन में अनुभूति की समान प्रामाणिकता होगी? या एक चमार ने मुर्दा मवेशी उठाने का कार्य किया हो और मृत पशु के मांस भक्षण की मजबूरी झेली हो, दूसरे ने कुछ बेहतर विरासत पाकर पढ़ लिखकर आरक्षण का लाभ उठा लिया हो और अपनी आर्थिक, बौद्धिक और सामाजिक स्थिति सुधार ली हो, तब इन दोनों के न तो अनुभव एक जैसे होंगे और न रचना कर्म।"[14] जरूरी नहीं कि दलित जो भी लिखेगा वह सब सही और सच्चा माना जाए। कई बार जो मर्ज रोगी खुद बताता रहता हो, वैद्य उसे नकार देता है। जाँच पड़ताल मे कुछ भिन्न मर्ज निकल आता है।

'सहानुभूति' भी एक मूल्य है। अब तक अधिकतर साहित्य इसी अनुभूति पर लिखा गया है। कवि या साहित्यकार 'स्व–पर' की भावना से ऊपर उठकर दूसरे की भावभूमियों में प्रवेश करने की क्षमता रखता है। इसी कारण वह न केवल अपनी, अपने समुदाय की, बल्कि मनुष्य व प्राणिजगत् की, और तो और पुष्प और पर्वत तक की संवेदनाओं को समझ सकता है और व्यक्त कर सकता है। 'सहानुभूति' तब तक स्वीकार्य है जब तक 'स्वानुभूति' वाला एक कवि की तरह स्थापित होकर नहीं निकलता। यही बात काशीनाथ सिंह कहते हैं– "सहानुभूति भी एक मूल्य है, यह चेतना अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर फैल रही है, यह खुशी की बात है हम तब तक लिख रहे हैं, जब तक आप हमें अप्रासंगिक न सिद्ध कर दें, हाँ यह मेरी हसरत है कि आप मुझे खारिज कर दें।"[15]

यह दूसरे वर्ग के लोग हैं, जो यह मानते हैं कि दलित साहित्य कोई भी लिख सकता है। दलित साहित्य मानवतावादी साहित्य है। बाबूराव बागुल ने एक दलित कॉन्फ्रेंस में कहा– "दलित साहित्य मानव को अपना केन्द्र बिन्दु मानता है, यह मानव को समानता का पाठ पढ़ाता है और मानता है कि मानव अपने सार रूप में नेक है। दलित साहित्य बदले या घृणा की जगह प्यार, भ्रातृत्व व समानता फैलाता है।"[16] यहाँ यह माना जा रहा है कि यह साहित्य किसी का विरोध नहीं करता। न ही किसी को साहित्य रचने से रोकता है। यह उस वर्ग के लिए है जो अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत है। अपनी शक्ति या ऊर्जा प्राप्ति के लिए एक आंदोलन है। विमल थोराट यही कहती है– "दलित साहित्य उस विद्रोह का उन्माद है, जो किसी विशिष्ट जाति या व्यक्ति के विरूद्ध नहीं बल्कि स्व की खोज में निकले हुए एक पूरे समाज का पूर्व परम्पराओं से विद्रोह है एवं अपने अस्तित्व की स्थापना का प्रयास है।"[17]

जयप्रकाश कर्दम भी दलित साहित्य को मानव से जोड़ते हैं केवल दलित से नहीं। वे कहते हैं– "दलित साहित्य का केन्द्र बिन्दु मनुष्य है। वह मनुष्य के दुःख दर्द, उसके संघर्ष और जिजीविषा तथा उसकी मुक्ति और उत्कर्ष का साहित्य है।"[18] इसलिए दलित साहित्य जाति, वर्ग से ऊपर है। दलित साहित्य वह भी लिख सकता है जो जन्मना दलित नहीं।

यह विवाद तब से ही है जब से शूद्रों या निम्न जातियों पर हो रहे अत्याचार के विरुद्ध लिखे जाने वाले साहित्य को 'दलित साहित्य' संज्ञा से अभिहित किया गया। इससे पहले रैदास, गाँधी, प्रेमचंद आदि द्वारा जो कुछ कहा जा रहा था लिखा जा रहा था, उस पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं था। मराठी से प्रभावित होकर 'दलित आंदोलन' हिन्दी में चल निकला और इसने कहा कि "दलित की व्यथा, दुःख, पीड़ा, शोषण का विवरण देना या बखान करना ही दलित चेतना नहीं है।"[19] अतः जो स्वयं दलित है उसका साहित्य 'दलित साहित्य' और जो गैर दलित है उसका दलितों पर लिखा साहित्य 'दलितवादी साहित्य' कहलायेगा। जो दलितवादी साहित्य है इसमें शोषण–पीड़ा–कष्टों का तो पर्याप्त वर्णन है पर 'जाति' पर पुरजोर चोट नहीं दिखती। ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं– "वे पसंद नहीं करते/'जाति' पर बात करना/क्योंकि वे नहीं हैं/पासी, चमार/भंगी महार/ जब कि वे हर रोज करते हैं/इस्तेमाल/ इन जातियों को गाली की तरह।"[20]

दूसरी ओर गैर दलित अपने पर लगे आक्षेपों से इनकार करते हैं। वे कहते हैं कि दलितों के पक्ष में प्रारम्भिक काल में गैर दलितों ने शुरूआत

की है। बहुत संजीदगी व शिद्दत से लिखा। आप भी लिखो, आपका भी स्वागत है। पर आप यदि यह क्षेत्र हमारे लिए निषिद्ध कर रहे हो तो इसका अर्थ है कि आप साहित्य में भी रिवर्जेशन चाह रहे हो।

है तो विवाद ही, पर यदि दृष्टि को बिल्कुल स्पष्ट कर लें तो स्थिति साफ होने में दिक्कत भी नहीं है। आप सोचिए कि कोई दलित ब्राह्मणवादी व्यवस्था के पक्ष में लिख रहा है, वह कैसे दलित साहित्य होगा? कोई गैर दलित केवल दलितों पर दया दिखाते हुए केवल शोषणपरक घटनाओं का वृत्त खड़ा करता है तो कैसे दलित साहित्य होगा? कोई जन्मना दलित जिसने शोषण भोगा भी है, क्या जरूरी है कि वह सब ठीक से वर्णन कर सकेगा? केवल प्रतिक्रिया करने को तो साहित्य नहीं कहा जा सकता। किसी गैर दलित की संवेदनशील रचना को कैसे और क्या कहकर छोड़ दीजियेगा। वह किस 'वर्ग' में रखी जाएगी?

दो बातें ही महत्त्वपूर्ण हैं। एक, जिस विषय पर आप कुछ भी रच रहे हैं उसकी चेतना होनी आवश्यक है। दूसरा, आपकी चेतना के पूर्ण सम्प्रेषण हेतु आपका 'साहित्यकार' होना आवश्यक है।

अब देखिए पीड़ा भोगने की सच्चाई कौन अधिक सच कहेगा? तो उत्तर होगा जिसने खुद भोगा है। कौन पीड़ा को अधिक संवेदना से पाठकों तक सम्प्रेषित कर सकता है? तो उत्तर होगा जो सामर्थ्यवान कवि है, साहित्यकार है। यहाँ निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि गैर दलित या जन्मना दलित की रचना में 'दलित चेतना' होना पहली शर्त है। 'दलित हित' ही दलित साहित्य का मूल तत्त्व है। दूसरा उस चेतना को कितनी सफलता से वह रचता है कि साधारणीकरण सहज हो जाए। शोषण करने वाला, सहने वाला दोनों के लिए ही वह रचना महत्त्वपूर्ण हो, दोनों ही उससे प्रभावित हों। यदि भोक्ता ठीक से संवेदना जगान में सफल हो जाता है तो द्रष्टा अपने आप ही खारिज हो जाएगा। पर यह कोई स्थायी शर्त नहीं है कि भोक्ता को विशेषाधिकार होता है। विशेषाधिकार केवल साहित्यकार को ही हो सकता है और जो साहित्यकार होगा, वह न दलित होगा, न गैर दलित। वह मानव और प्राणी के आदर्श पायदान पर होगा।

REFERENCES

1. रामचन्द्र वर्मा – संक्षिप्त शब्दसागर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ 408

2. कंवल भारती – उत्तर प्रदेश दलित विशेषांक, पृष्ठ 12

3. माताप्रसाद – उत्तर प्रदेश दलित विशेषांक, पृष्ठ 64

4. डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन – उद्धृत सं. डॉ. रजतरानी मीनू, अस्मितामूलक विमर्श और हिन्दी साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017 ई., पृष्ठ 10

5. बिहारी लाल 'हरित' – उद्धृत सं. डॉ. रजतरानी मीनू, अस्मितामूलक विमर्श और हिन्दी साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017 ई., पृष्ठ 18

6. शरण कुमार लिम्बाले – दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000 ई., पृष्ठ 38

7. गां. म. कुलकर्णी – दलित साहित्य : एक चिंतन, साहित्य और दलित चेतना

8. प्रो. केशव मेश्राम – उद्धृत सं. डॉ. श्रवण कुमार मीणा, समकालीन विमर्श : विविध परिदृश्य, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016 ई., पृष्ठ 239

9. जयप्रकाश कर्दम – तिनका–तिनका आग (कविता), पृष्ठ 15

10. जयप्रकाश कर्दम – दलित साहित्य (वार्षिकी), दिल्ली, पृष्ठ 12

11. डॉ. शरण कुमार लिम्बाले – उद्धृत सं. डॉ. रजतरानी मीनू, अस्मितामूलक विमर्श और हिन्दी साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017 ई., पृष्ठ 11

12. ओमप्रकाश वाल्मीकि – उदधृत उपर्युक्त, पृष्ठ 09

13. प्रोफेसर मैनेजर पांडेय – उद्धृत सं. डॉ. रजतरानी मीनू, अस्मितामूलक विमर्श और हिन्दी साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017 ई., पृष्ठ 12

14. शरण कुमार लिम्बाले – उद्धृत सं. डॉ. रजतरानी मीनू, अस्मितामूलक विमर्श और हिन्दी साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017 ई., पृष्ठ 11

15. काशीनाथ सिंह – वसुधा, दलित साहित्य विशेषांक, पृष्ठ 307

16. बाबूराव बागुल, उद्धृत सं. डॉ. श्रवण कुमार मीणा, समकालीन विमर्श : विविध परिदृश्य, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016 ई., पृष्ठ 158

17. विमल थोराट, उद्धृत ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2001 ई., पृष्ठ 64

18. डॉ. जयप्रकाश कर्दम – उद्धृत जगन्नाथ सिंह पंडित, साहित्य में दलित चेतना की अवधारणा और उसका स्वरूप, पृष्ठ 33

19. मोहन नैमिशराय – भारतीय दलित आंदालन का इतिहास, भाग–3, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 330

20. ओमप्रकाश वाल्मीकि – अब और नहीं (कविता संग्रह), उद्धृत 21वीं सदी के साहित्यिक विमर्श, सं. ले. डॉ. विष्णुदेव सिंह मल्लिक, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2013 ई., पृष्ठ 130